

○.....
 हमारी स्कूली व्यवस्था सदा से ही लेखन-पठन की क्षमताओं पर केन्द्रित रही है। लेखन-पठन का 'कौशल' भी 'वास्तव में' कहां तक अर्जित हो पा रहा है, यह भी विचारणीय प्रश्न है। लेकिन इसके इतर अन्य विषयों को जैसे - खेल, संगीत, नाटक, चित्रकारी, भ्रमण और यहां तक कि विज्ञान को भी- अवलोकन, जिज्ञासा, खोज आदि को - उपेक्षित एवं गौण माना जाता है।

इस संदर्भ में न सिर्फ स्कूल बल्कि अभिभावकों की दृष्टि भी यही बनी हुई है कि ये सब किस काम के हैं जबकि बच्चे को एक अदद 'नौकरी' करनी है और नौकरी तो इन सब से मिलनी है नहीं। यह सोच बच्चों एवं शिक्षा की आधी-अधूरी समझ को ही दर्शाती है। ये बच्चे के बहु-आयामी व्यक्तित्व को अनदेखा कर एक सांचे में ढालकर अपनी जरूरतों के मुताबिक ऐसे व्यक्तित्वों का निर्माण करना है जो सर्वथा एक जैसे हों तथा व्यवस्था में आसानी से खप सकें।

शिक्षा में कला की उपेक्षा एवं रूढ़ तरीकों से कराई गई कला शिक्षा बच्चों में आत्माभिव्यक्ति एवं व्यक्तित्व के बुनियादी पक्षों के विकास में अवरोध उत्पन्न करती है। यह बच्चों के 'देखने' को प्रभावित करता है और अपने परिवेश के प्रति जागरूकता को रोकती है। बच्चों में आत्मविश्वास, सौन्दर्यबोध, कल्पनाशीलता, रचनात्मकता के गुणों के विकास के साथ ही कला के माध्यम से बच्चा अपने आसपास की स्थितियों पर प्रतिक्रिया भी दर्ज कराता है। जरूरत है उसे कला के लिए अच्छा माहौल उपलब्ध हो।

चित्रकला : बाल शिक्षण का महत्त्वपूर्ण अंग है !

□ चन्द्रप्रकाश कड़ा

आज भी ढेरों स्कूलों में बच्चों को 'चित्रकारी' बहुत ही दरिद्र एवं रूढ़ तरीके से करवाई जाती है। जिसकी वजह से बच्चे पहले से जमे आकारों को चित्र के रूप में बनाने की कोशिश करते हैं। रोजमर्रा की कोई चीज या आसपास का कोई दृश्य बहुत कम ही देख देखने को मिलता है। अधिकांशतः उनके चित्र सीनरी जैसे होते हैं। जिसमें रूपाकारों को हू-ब-हू वैसा बनाने के लिए खूब मेहनत की हुई होती है।

आप अक्सर देखेंगे कि जब भी किसी स्कूल में चित्रकारी पर कोई प्रतियोगिता होती है, तो बच्चे ऐसे दृश्यों को बनाते हैं, जो शायद उन्होंने अपनी नन्हीं जिन्दगी में कभी देखे ही न हों। जैसे - दो पहाड़ों से निकलता झरना या नदी, उगता या डूबता हुआ सूरज, पानी में खिलता इकलौता कमल का फूल या पतवार के सहारे तैरती नाव।

अब सवाल यह उठता है कि बच्चे इस तरह की रूढ़ आकृतियों को बनाते समय अपने

आप को क्यों भयग्रस्त महसूस नहीं करते। जबकि रोजमर्रा की चीजों या देखी गई चीजों को कागज पर बनाने में उन्हें संकोच और डर महसूस होता है। पूरा माहौल घबराहट में बदल जाता है, जब उनसे कहें कि तुम्हें अपने मौहल्ले का हैण्डपम्प या कचरादान का चित्र बनाना है या फिर सब्जी मण्डी का। ढेरों बच्चों का सीधा यही जवाब होता है कि, "हमें नहीं आता है।"

उनसे कहें भी कि तुम से जैसा बने वैसा ही बनाओ, घबराने की बात नहीं, तब भी अधिकांश बच्चों की यही मंशा होती है कि किसी न किसी तरीके से इस मुसीबत से छुटकारा मिल जाए। जबकि आप खुद महसूस करेंगे कि पहले वाली रूढ़ आकृतियों से उनके दैनिक जीवन में दिखने वाली चीजों को बनाने में कम जटिलता होती है।

असल में इन सब चीजों को लेकर हम गंभीरतापूर्वक विचार करें तो हमारे अपने द्वारा बनाया गया माहौल ही सबसे ज्यादा दोषी नजर आता है। हमने अपने



आसपास के माहौल में यहां तक कि अपने घर में भी ऐसी चीजों को ज्यादा प्राथमिकता दी है, जिनका हकीकत में बच्चों के सीखने एवं समझने की प्रक्रिया में ज्यादा असर नहीं होता।

मगर हमारी एक परिपाटी इस तरह की बनी हुई है कि बच्चे अगर चित्रकारी के समय कुछ सीनरीनुमा चीजों को बनाएं तो उसका महत्त्व कुछ अलग ही होगा। खासकर उन चित्रों से जिसमें मोहल्ले का कचड़ा-दान या टूटा-फूटा हैण्डपम्प बना हो। क्योंकि ऐसी चीजों को जिन्हें एक चित्र में दिखाने की कोशिश की गई है, उसे हम अपने घर की दीवार पर लटकाने की तो बात ही अलग है, उस बच्चे से यह तक कहने की जरूरत नहीं समझते कि तुमने बहुत बढ़िया चित्र बनाया है।

हमें लगता है यही हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है, जिसके कारण बच्चे अपने परिवेश को दो हिस्सों में बांटना शुरू कर देते हैं। एक वह हिस्सा जिसमें बच्चों को ज्यादा शाबासी और होनहार बच्चे के रूप में देखा जाता है। ऐसे हिस्से में आती हैं वही रूढ़ और अधिकांशतया अनदेखी चीजें, जिनको बच्चों ने शायद ही कभी करीब से देखा हो। पर हां अपने घरों में टंगे पोस्टरों या सीनरियों के रूप में एकदम सजी-धजी दीवारों पर, लटकी जरूर देखी होंगी। जिनमें एकदम गुच्छेदार फूलों से लदे हुए पेड़, जिसके आधे हिस्से पर डूबते हुए सूरज की लालिमा उसे और खूबसूरत बना देती है। लौटते हुए पक्षियों का झुण्ड, जो ऐसा लगता है कि सभी इसी पेड़ पर ही बसेरा डालेंगे। और एकदम घनी रंग-बिरंगे फूलों वाली घास, जिसके बीचों-बीच बना फाइव स्टार होटल की तरह एक महल।

दूसरे हिस्से में आती हैं वे चीजें, जिसे बच्चे रोजाना देखते हैं, जैसे अपने आसपास का बाजार या मण्डी, मोहल्ले का हैण्डपम्प या पानी का कुंआ या फिर बस स्टेण्ड या अन्य इसी प्रकार की चीजें। पर इन सब चीजों को उतनी बारीकी और ध्यान से नहीं देखता क्योंकि उसे पता है कि इन चीजों का सीनरी वाली चीजों के बराबर तो महत्त्व है ही नहीं। न ही इन चीजों को बनाने से हमें शाबासी मिलने वाली है। इसलिए वह अपने इर्द-गिर्द की अधिकांश चीजों को केवल उपयोग आने की दृष्टि से ही देखता है। वह जानता है कि गांव या मोहल्ले का हैण्डपम्प हम अपने चित्र में बनाएंगे, तो सभी मजाक उड़ाएंगे। उसे शाबासी कोई नहीं देगा, क्योंकि मोहल्ले के हैण्डपम्प या शहर के बस स्टेण्ड का चित्र सीनरीनुमा मानकर दीवाल पर कोई नहीं लटकायेगा। उन्हें तुच्छ और साधारण-सी चीजें ही माना जाएगा।

यही कारण है कि बच्चे अपने अनुभव से जुड़ी हुई चीजों को बनाने में संकोच और डर महसूस करते हैं। जबकि सीनरीनुमा चीजों

को एकदम सलीके और सजावट के साथ बनाने को तैयार हो जाते हैं। सीनरीनुमा चीजों का बिम्ब उनकी मनःस्थिति में रचा-बसा होता है, क्योंकि वह बचपन से उन चीजों को ज्यादा महत्त्व की दृष्टि से देखता चला आ रहा होता है। निरन्तर उसके दिमाग में एक प्रक्रिया चलती रहती है कि चित्र को ज्यादा से ज्यादा लुभावना कैसे बनाएं? उसकी दिलचस्पी-बचपन से बनती चली आ रही चीजों की उसके मन में छवि, बिम्ब और शाबासी - यही वो चीजें हैं, जो उसके आत्मबल, साहस और संयम को बांधे रखती हैं।

पर हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि बच्चे अपना ध्यान उन चीजों पर ज्यादा केन्द्रित करें, जिन्हें वे अपने इर्द-गिर्द देखते हैं। उन चीजों को बारीकी से देखें और सोचें भी। शुरू में बच्चों और शिक्षकों को या फिर अभिभावकों को ही लगने लगता है कि, बच्चे अगर मोहल्ले का हैण्डपम्प या टूटी हुई पुलिया का चित्र बना रहे हैं तो इसमें बड़ी बात क्या है? हमें इनमें बड़ी बात दिखाई नहीं देती। और न ही हम देखने की कोशिश करते हैं।

मान लो वह बच्चा अपने आस-पास की कोई टूटी हुई पुलिया का चित्र बनाता है। पुलिया से गुजरने वाली सड़क से अभी भी लोगों या वाहनों का आना-जाना चल रहा है, या ठप्प हो गया है। पुलिया के टूट जाने से वहां के लोगों की दिनचर्या पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? ऐसे सैकड़ों सवाल उस बच्चे के मन में जन्म लेने लगेंगे। वह खाली चित्र नहीं बना रहा है, बल्कि उस पुलिया के आसपास की अस्त-व्यस्त स्थिति, वहां व्याप्त भीषण परिस्थिति, सब के बारे में वह सोचेगा। पर हमें यह तभी समझ में आएगा, जब हम उससे उसके बनाए चित्रों पर बातचीत करेंगे।

अगर हम बातचीत भी नहीं करेंगे, तब भी उनके अर्न्तमन में समाज में व्याप्त जर्जर परिस्थिति का अंकुरण तो हो ही गया होगा जिस पर कि वह लगातार सोचता है और जब उसको लगता है कि यहां हमारी बात को कोई सुनेगा। तब वहां वह अपने मन में उठने वाले सवालों को रखता भी है।

एक उदाहरण के जरिए ये बात और स्पष्ट करना चाहूंगा :

एक बार गरिमा नामक लड़की ने, जिसकी उम्र लगभग 8 साल की रही होगी, एक चित्र बनाया। चित्र में उसने गड्ढों में से कटोरियों की मदद से पानी निकालते लोगों और महिलाओं को दर्शाया। आसपास उसने पूरे कागज पर काला रंग पोत दिया। उसके ठीक नीचे उसने एक चौराहा बनाया। जिसके बीचों-बीच पानी का एक फव्वारा बनाया जिसके आस-पास लोगों का तांता लगा था।

मेरी समझ में नहीं आया कि आखिर यह लड़की चित्र के जरिए कहना क्या चाहती है। मैंने उससे जब चित्र पर बातचीत की

तो उसने बताया कि हमारे मौहल्ले में रोजाना चार बजे रात को एकदम शोर होता है। क्योंकि मौहल्ले में नल में पानी आता है। नलों में पानी बहुत धीरे-धीरे आता है, इसलिए हमारे वहां लोगों ने पाइप लाइन तक (जमीन के अन्दर तक) गड़ड़े खोद लिए। मौहल्ले में रहने वाले लोग रोजाना कटोरी के सहारे पानी निकाल-निकाल कर बर्तन भरते हैं। ये देखो ! मेरे पिताजी कटोरी से पानी निकाल रहे हैं और मेरी मां बाल्टी में पानी लेकर ले जा रही है। मैंने पूछा - चारों तरफ यह काला रंग क्यों किया है ? तब उसने बताया, जब नल आता है तब अंधेरा होता है इसलिए हमने काला रंग भरा। और यह नीचे राजेन्द्र पार्क के चौराहे वाला फव्वारा बनाया है। जो रोज शाम को चार बजे खुलता है ताकि चौराहा सुन्दर दिखे।

फिर उसने सवाल किया था - सर एक तरफ लोगों को पीने के लिए इस गर्मी में पानी नहीं और दूसरी तरफ यह फव्वारे के रूप में इतना पानी बर्बाद किया जा रहा है। इसे लोग रोकते

क्यों नहीं ? मैंने कहा - लोगों को रोकना चाहिए मगर उन्होंने शायद यह सोचा ही न हो।

तब उसने कहा - इस पूरे नगर को कौन देखता है ?

मैंने कहा - जिले को तो कलेक्टर साहब देखते हैं। उसने कहा - अगर हम उनको इसके बारे में एक पत्र लिखें तो वह हमारी बात सुनेंगे ?

मैंने कहा - क्यों नहीं सुनेंगे, तुम अपनी बात लिखकर तो देखो।

उस लड़की ने अपने उस चित्र के साथ कलेक्टर के नाम एक पत्र लिखा और मेरे साथ जाकर उस पत्र को दिया भी।

बात यह नहीं कि गरिमा के पत्र से नगर की शोभा बढ़ाने वाला फव्वारा बंद हुआ कि नहीं। महत्वपूर्ण बात यह है कि 8 साल के बच्चे की अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के प्रति सोच क्या बनी। समाज में व्याप्त ऐसी दोहरी नीतियों के प्रति लोगों का कितना ध्यान जाता है और अगर जाता भी है तो उसके प्रति उनकी अपनी प्रतिक्रिया क्या होती है ? पर दुर्भाग्य की बात यह है कि आज भी लोग यह सोचते हैं कि समाज को सुव्यवस्थित चलाने की जिम्मेदारी सरकारी तंत्र की है। चाहे फिर नीतियां या व्यवस्थाएं कितनी ही तंग या पेचीदा हों। पर चूंकि सरकार के द्वारा उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है, तो उन्हें मानना ही पड़ेगा। इसीलिए शायद वर्षों से हम उसी सड़ांध भरे, दम घुटने वाले माहौल में जीते आ रहे हैं। और अपनी आने वाली पीढ़ी को भी ऐसे ही जीते रहने की आदत डलवाने की कोशिश करते रहते हैं। इसलिए अपने इर्द-गिर्द क्या हो रहा है, क्या होना चाहिए ? इन मुद्दों पर न तो बच्चों से बातचीत की जाती है न ही उनको ऐसे सवालों के प्रति सोचने के लिए

उकसाया जाता है। चाहे मोहल्ले का हैण्डपम्प खराब हो या पुलिया टूट गई हो या फिर हमारे बस स्टेण्ड की हालत खस्ता हो गई हो आदि-आदि। इससे बच्चे को क्या लेना देना, क्योंकि यह सब चीजें उसकी पढ़ाई का हिस्सा तो हैं नहीं। न ही परीक्षा में ऐसा कोई सवाल आने वाला है कि तुम्हारे मौहल्ले के हैण्डपम्प की क्या स्थिति है या बस स्टेण्ड पर कोई निबंध लिखने की बारी। निबंध तो लिखना है उसे महात्मा गांधी या अकबर पर। जिसे उसने अपने जीवन में देखा नहीं, सिर्फ सुना है या फिर किसी चित्र प्रतियोगिता के दौरान ऐसे ही महापुरुषों का चित्र बनाने की तैयारी करवाते रहते हैं जिनका कि उसकी अपनी जिन्दगी में उतना महत्त्व नहीं होता, जितना की आसपास की चीजों का होता है। अगर देखा जाए तो सही मायनों में दुर्भाग्य की बात यही है कि आज भी कला को स्कूली पाठ्यक्रम का एक फालतू हिस्सा माना जाता है जिसकी वजह से बहुत कम बच्चे ही चाहते हैं कि वे वास्तव में एक कल्पनाशील कलाकार बनें और ऐसे बच्चों को हमारी शिक्षण प्रक्रिया मौके भी कितने देती है, जो भी उन्हें मौका मिलता है उसके पीछे हमारी अपेक्षाएं पहले से जुड़ जाती हैं कि चित्र फोटोनुमा बनना चाहिए। जिसकी वजह से सैकड़ों बच्चों को शारीरिक दक्षताएं तो उभर कर सामने आ जाती हैं। किन्तु मानसिक कौशल एवं भावना की अभिव्यक्ति अछूति रह जाती है।

सचमुच में देखा जाए तो यह बहुत ही गंभीर मसला है। जिस पर हमें लगता है, बहुत गहराई से विचार करने की जरूरत है। आज के दौर में जिस तरह से शिक्षण को हर रोज एक नये तरह का जामा पहनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें इस तरह की कुछ बुनियादी चीजों को विकृत होने से बचाने की जरूरत है।

हमें बन्द कर देना चाहिए ऐसी चित्र प्रतियोगिताओं को जो सिर्फ सीनरीनुमा रूपाकारों के मोह में गढ़ी जाती हैं। जिनका कि बच्चों की खुद की अभिव्यक्ति, उनकी दृष्टि, कल्पना एवं अनुभवों से कोई लेना देना नहीं होता। ऐसी प्रतियोगिताएँ बच्चों को केवल कुछ अनजान चीजों की नकल करना ही सिखा सकती हैं, वह भी चमक-दमक भरे तरीके से। बच्चों को इस प्रकार के अभ्यास अपने समाज एवं जीवन के प्रति सजग दृष्टि पनपने ही नहीं देंगे। जिसकी कि आज की शिक्षण प्रक्रिया को अहम् जरूरत है।

इसलिए हमें यह समझना होगा कि चित्रकला पाठ्यक्रम का फालतू विषय नहीं है और न ही बच्चों को मनोरंजन करवाने का तरीका। बल्कि यह भी शिक्षण का एक अंग है। सही मायने में देखा जाए तो शिक्षण की प्रारंभिक बुनियाद यहीं से शुरू होती है। बहुत छोटे बच्चे जो लिखना-पढ़ना सीख रहे होते हैं, वह अक्सर ही कागज पर आड़ी-टेड़ी-तिरछी लकीरों को खींचता है। उन लकीरों

ने अभी वह अर्थपूर्ण परिपक्वता हासिल नहीं की है, जिनके रेखांकन से उस चीज की हू-ब-हू शकल हमें दिखे। इसलिए वह बुदबुदाते हुए स्थापित की जा रही चीज को अभिव्यक्त करके अपने आत्मसंयम को बांधे रखने की कोशिश करता है।

परन्तु खुद बात यह है कि बहुत कम स्कूलों या घरों में बच्चों को इस प्रकार की चित्रकारी का मौका मिलता है। ज्यादातर बच्चे तो केवल बेमतलब आकृतियों के भीतर ही रंग भरकर अपने मन को समझा लेते हैं और हमारी चौकन्नी दृष्टि यह खोजने का प्रयास करती है कि किस बच्चे ने आकृतियों में ठीक से रंग भरा है। आकृतियों के चौतरफा में से किसी भी जगह से रंग बाहर दिखा, हम यह मान लेते हैं कि बच्चे को अभी चित्रकारी ठीक से करना नहीं आया। कई बार तो हम खुद ही उसके हिस्से की चित्रकारी करने लगते हैं या फिर ढेर सारी हिदायतों का बखेड़ा कर देते हैं। जिसके कारण बच्चों से जब चित्र बनाने को कहते हैं तो अधिकांशतः बच्चे यही कहते हैं कि हमें चित्र बनाना नहीं आता। कुछ पूछेंगे कि किस चीज का चित्र बनाएं? अगर उनसे कहो भी कि तुम्हारे मन में जो भी आए, उसका ही चित्र बनाओ। तब भी वे स्पष्टतया यही कहते हैं कि हमें समझ नहीं आता कि क्या बनाएं।

दरअसल जिन बच्चों ने स्वतंत्र ढंग से कभी चित्रकारी की ही न हो। उनसे इस प्रकार की अपेक्षा करना अनुचित ही होगा। जो केवल कपाट बंद आकृतियों में ही रंग ही भरते आए हैं तो उनके मन में इर्द-गिर्द की चीजों पर भावनात्मक अभिव्यक्त करने का उन्माद ही कहां बचता होगा !

फिर भी अगर थोड़ी-सी कोशिश भी की जाए तो ऐसे बच्चों में अपनी चीजों या भावनाओं को अपने तरीके से अभिव्यक्त करने का हौसला जगाया जा सकता है। अब सवाल उठता है कि यह हौसला जगाया कैसे जाए ?

इसके जवाब में पहली कोशिश तो हमें यह करनी होगी कि बच्चों को ज्यादा से ज्यादा खुद के मन से चित्रकारी करने के मौके देने होंगे और वह जो भी बनाए उसे बनाने दें।

दूसरी कोशिश, बच्चों ने जो भी बनाया है उस पर एक सामान्य-सी बातचीत करें। कोई तीखी टिप्पणी या सुझाव देने की कोशिश न करें। बच्चे द्वारा खुद बनाई गई चीज के बारे में उसे ही ज्यादा बताने दें। हमारा काम है कि उसको उस चीज की गहराई में जाने के लिए उकसाना और साथ ही चर्चा को एक रख देना।

तीसरी कोशिश, उसने जो भी बनाया, उसका सम्मान करें, प्रोत्साहन दें ताकि उसका हौसला बना रहे।

चौथी कोशिश, कक्षा में कोई न कोई ऐसी जगह जरूर बनाएं जहां यह सामग्री प्रदर्शित की जाए। शुरू में बच्चों की सामग्री प्रदर्शन में मदद करें। बाद में बच्चों को खुद करने दें।

उपरोक्त चारों कोशिशों काफी महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक शिक्षक को इसे अमल में लाना चाहिए। इन चारों प्रक्रियाओं का आपस में तालमेल बनाते हुए बच्चों को खुद से चित्रकारी करने का मौका दें। जब बच्चे निपुण होने लगें तो धीरे-धीरे उन्हें छोटे-छोटे विषय देकर चित्रकारी करने का मौका देना चाहिए। जैसे - बाजार या सब्जी मण्डी, सिनेमा हाल, बस स्टैण्ड इत्यादि।

बच्चे जो भी बना रहे हैं, वह उनकी अपनी अभिव्यक्ति है, जिसे वह रंग-बिरंगी आकृतियों की मदद से अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रहे हैं। बहुत छोटे बच्चे जो अपना लिखना-पढ़ना सीख रहे होते हैं उनके लिए यह और भी सार्थक होगा।

आपने देखा होगा सैकड़ों बच्चों के लिए यह बहुत ही दुखदायी होता है कि गूढ़ आकृतियों को हू-ब-हू कैसे बनाएं ? बच्चों को बहुत तकलीफ का सामना करना पड़ता है। जब उस सम्पूर्ण वर्णमाला को हू-ब-हू बनाने के लिए कहा जाता है। उसके बिना काम चलने वाला नहीं होगा। अगर उसे पढ़ना-लिखना सीखना है तो उन अरुचिकर आकृतियों या संकेतों को बनाना और पढ़ना आना चाहिए। भले ही समझ में न आए पर सीखना तो जरूरी है। इसलिए कई बच्चों को उनके माता-पिता हाथ पकड़कर लिखवाने का अभ्यास करवाते हैं, कभी-कभी शिक्षक उन पर लेखनी को बार-बार फिराने का काम देते हैं।

ऐसे बच्चों को अगर स्वतंत्र चित्रकारी करने के बार-बार मौके दिए जाए तो यह समस्या न के बराबर ही आती है। क्योंकि चित्रकारी करते-करते बच्चे अपने हाथ पर नियंत्रण पाने लगते हैं और साथ में उंगलियों का संतुलन भी बनने लगता है। उंगलियों की एक बार लेखनी पर पकड़ बन जाती है तो यह समस्या न के बराबर ही रहती है।

इसलिए अगर हम यह भी कहें कि चित्रकारी शिक्षण का महत्वपूर्ण अंग है और साथ में लेखन की भी शुरूआत है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

साथ में जिन बच्चों को शुरू से ही इस तरह का अवसर मिलता है, वे कभी यह नहीं कहते कि चित्र बनाना नहीं आता या चित्र में क्या बनाएं। उनके चित्र सीनरीनुमा चीजों में नहीं जकड़े होते बल्कि अपने इर्द-गिर्द की चीजों के प्रति अपने खुद के नजरिये, सोच पर आधारित होते हैं। ऐसे नजरिए वाली अभिव्यक्ति, खुद की सोच, आज के बाल शिक्षण की अहम जरूरत है। ♦